जैनविद्याओंमें शोधके क्षितिज
जीवविज्ञान

डा० कल्पना जैन, भिण्ड (म०प्र०)

लोढ़ा,[1] सिकदर[2] और जैन[3]के विवरणात्मक तथा समीक्षात्मक लेखोंसे पता चलता है कि जैन आगमों एवं अन्य ग्रंथोंमें अजीव पदार्थोंके समान जीवित पदार्थोंपर भी पर्याप्त सामग्री मिलती है। जैनने आगम वर्णित जीवकी परिभाषाकी समीक्षा करते हुये बताया है कि जीव दो प्रकारके गुणोंसे अभिलक्षित किया गया है। पौद्गलिक रूपमें उसमें असंख्यात प्रदेशिकता, गतिशीलता, परिवर्तनशीलता, देहपरिमाणकता, प्राणापान, कर्मबन्ध एवं नानात्व पाया जाता है। अभौतिकरूपमें उसमें अविनाशित्व, अमूर्तत्व एवं चैतन्य (संवेदनशीलता) होती है। भावप्राभृतमें इसे रंगहीन, स्वादहीन, गंधहीन, अनिश्चित आकार, अलिंगी एवं ज्ञानेन्द्रियोंसे अगम्य बताया गया है। इसके आठ अलौकिक गुणोंमें केवल ज्ञान, केवल दर्शन, अनन्तवीर्य व सम्यक्त्वके अतिरिक्त सूक्ष्मता, अव्याबाधता, अवगाहन क्षमता, तथा अणुकलघुत्वके समान गुण भी समाहित हैं। भगवतीसूत्रमें जीवके २३ नामोंका उल्लेख है जिनका भौतिक अभौतिक गुणोंके रूपमें वर्गीकरण किया जा सकता है। सारणी १ से पता चलता है कि जीवके अधिकांश लक्षण भौतिक प्रकृतिके हैं। वस्तुतः जिन लक्षणोंको अभौतिक श्रेणीमें बताया गया है, वे भी भौतिकताकी धारणासे स्पष्ट किये जा सकते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये शरीरी जीवके विभिन्न कार्यों एवं स्थूल गुणोंको ही निरूपित करते हैं। इसमें मनोरंजक तथ्य यह है कि इन लक्षणोंमें अमूर्तताका गुण कहीं समाहित नहीं है। लगता है कि यह तो उत्तरवर्ती विकास है। साथ ही, कुन्दकुन्द और उमास्वातिके समयमें उपलब्ध आगमोंकी प्रामाणिकता निर्विवाद रही है। (यह सर्वार्थसिद्धिके विवरणसे भी पुष्ट होती है)। तब यह प्रश्न स्वाभाविक है कि जीवके २३ लक्षणोंमें से केवल 'उपयोगोलक्षणम्' ही क्यों उत्तरकालमें मुख्य लक्षण माना जाने लगा? विद्वानोंको इस विषयमें अनुशीलन करनेकी आवश्यकता है। आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे उपयोगके ज्ञान दर्शनात्मक रूपोंको संवेदनशीलताकी विभिन्न कोटियोंके रूपमें माना जा सकता है जिसकी भौतिक व्याख्या की जा सकती है। इस आधारपर आजका विज्ञान जीवनको भौतिक ही प्रदर्शित करता दिखता है। पर वह जीवनके मूल लक्षणको अभौतिक माननेके विषयमें मौन है। एक ओर जहाँ आधुनिक युगमें परखनलीमें

---

१. जैन, नन्दलाल : अ–जीव और जीवविज्ञान, वल्लभशताब्दी स्मारिका, १९७०।
ब–वोटेनिकल कन्टेन्ट्स इन जैन कैनन्स, दिवाकर अभि० ग्रन्थ, १९७६।
स–जुओलोजिकल कन्टेन्ट्स इन जैन कैनन्स, पूर्वोक्त, १९७६।

२. लोढ़ा, कन्हैयालाल : जैन आगमोंमें वनस्पतिविज्ञान, मरुधरकेसरी अभिनन्दन ग्रंथ, १९६८।

३. सिकदर, जे०सी० : अ–फैब्रिक आव लाइफ एज कंसीव्ड इन जैन बायोलोजी, सम्बोधि, ३, १, १९७४
ब–ए सर्वे आव प्लान्ट एण्ड एनीमलकिंगडम् पूज रिवील्ड इन जैन बायोलोजी १-२, जबलपुर वि० वि० व्याख्यानमाला १९७६।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारणी १. जीवके गुणोंका वर्गीकरण

भौतिक लक्षण	अभौतिक लक्षण
१. प्राणवान् (श्वासोच्छ्वासादि)	१. प्राणवान (जीव, अदृश्यशक्ति)
२. अस्तिकायत्व	१८. भूतत्व (अनादि, अनन्त, आविनाशी)
३. जीव (आयुष्य)	५. विज्ञ (संवेदनशीलता ?)
४. सत्व (समर्थ)	१९. वेद (अनुभूति)
५. विज्ञ (संवेदनशीलता)	२०. मानव (अनादि)
६. चेता (पुद्गल चयकारी)	२१. स्वयंभूत
७. जेता (पुद्गल क्षयकारी)	२२. अन्तरात्मा (अन्तः शरीरी)
८. आत्या (सततगामी)	
९. हिंडुक (गमनशील)	
१०. पुद्गल (पूरण-गलन)	
११. कर्ता	
१२. विकर्ता (कर्मवेध)	
१३. जगत (गतिशील)	
१४. जन्तु (जन्मवान्)	
१५. योनि (प्रजननक्षमता)	
१६. सशरीरी (शरीर धारक)	
१७. नायक (कर्मनेता)	
१८. रंजण (रागद्वेष आदि)	

जीवनके उदयसे चैतन्यकी भौतिकता पर सहसा अविश्वास नहीं हो पाता, वहीं अनेकों द्वारा पूर्वजन्मकी घटनाओंकी स्मृति तथा मृत व्यक्तियोंकी आत्माओंसे सम्पर्ककी प्रक्रिया जीवनतत्वकी अभौतिकताको प्रकट करती दिखती है। वस्तुतः बीसवीं सदीमें मानव दिग्भ्रमित है—जीवनके जीवन-तत्वकी यथार्थ प्रकृति क्या है ? फिर भी, यह माना जा सकता है कि वर्तमान विज्ञानकी जीवन तत्व विषयक मान्यतायें आगम युगीन मान्यताओंको पुष्ट करती हैं जहाँ इन्द्रिय अगम्यता एवं अमूर्ततामें स्पष्ट अन्तर परिलक्षित है।

जैनने अपने शोध पत्रोंमें प्रदर्शित किया है कि जीवनतत्वको वर्तमान जीव केशिकाओंकी अपेक्षा सूक्ष्म ऊर्जात्मक मानने पर भी उनकी भौतिकता ही पुष्ट होती है क्योंकि ऊर्जायें भी जैनागमोंमें कणमय मानी गई है। कण और ऊर्जाके अतिरिक्त किसी अभौतिक पदार्थको विज्ञान अभी मान्यता नहीं दे पा रहा है। इसके लिए कुछ और ठोस प्रमाणोंकी आवश्यकता है। इस प्रकार जीवनके मूल तत्वकी समीक्षा अभी भी एक जटिलतर प्रश्न बना हुआ है।

सिकदरने अपने लेखमें जीवनके आविर्भाव और संचलनमें कारणीभूत आगमोक्त पर्याप्ति और प्राणोंको जीवन शक्तिके रूपमें बताया है। यह उचित नहीं प्रतीत होता, क्योंकि पर्याप्तियोंके विकाससे जीवनके जो लक्षण प्रकट होते है, वे प्राण कहलाते हैं। पर्याप्तियाँ तो प्रायः सभी स्थूल रूपमें प्रकट होती हैं और उनके विकासमें सूर्यकी तथा शरीरकी स्वयंकी ऊष्मा एवं अन्तःस्थित किण्वोंकी क्रियायें ही कारण होती हैं, यह अब स्पष्ट हो चुका है। हाँ, कर्मसिद्धान्तके अनुसार यह माना जा सकता है कि ये पर्याप्तियाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशिष्ट नाम कर्मोदयके कारण प्रकट होती हैं। इस कर्मक ही शक्ति माना जा सकता है। इस शक्तिके कारण ही विविध प्रकारके प्राणात्मक कार्य सम्पन्न होते हैं। पर प्राण और पर्याप्तियोंकी पौद्गलिकता या पुद्गलकार्यता प्रत्यक्ष है। इस प्रकार आगमकालके जीवका लक्षण उत्तरवर्ती बीचके अमूर्त लक्षणसे विलक्षण प्रतीत होता है। संभवतः ये जीवके औपाधिक लक्षण हैं। फलतः सभी तत्वोंके मूलभूत तत्वकी परिभाषाके विकास पर और उसकी अविसंवादी परिभाषाके लिए शोधकी पर्याप्त संभावनाएँ हैं। वर्तमान में तो यही कहा जा सकता है कि आगमोंमें मूलतः जीवको अभौतिक माना गया है जिसका स्वरूप स्वानुभूतिके सिवा प्रयोग और तर्कोंसे जानना सम्भव नहीं है। हाँ, रूसी वैज्ञानिक पावलोवके कुछ प्रयोग अवश्य इस दिशामें कुछ नया प्रकाश देते दिखते हैं।

विभिन्न प्रकारके संसारी जीवोंकी उत्पत्ति सामान्यतः गर्भज (जरायुज, अंडज और पोतज) तथा सम्मूर्च्छनज होती है। इसमें गर्भज उत्पत्तिको तो जीवसे जीवकी सलिंगी उत्पत्तिके रूपमें लिया जा सकता है। सम्मूर्च्छनज उत्पत्तिको अजीवसे जीवकी उत्पत्तिके रूपमें लिया जा सकता है। प्राचीनकालमें जीवोत्पत्तिके दोनों ही सिद्धान्त प्रचलित रहे हैं। अरस्तु तो अजीवसे जीवकी उत्पत्तिके सिद्धान्तको मानता था। यह सम्मूर्च्छनज उत्पत्ति एक कोशिकीय जीवोंके लिए सत्य है पर बहुकोशिकीय एवं एकाधिक इन्द्रियके जीवोंपर लागू नहीं होती। फलतः विकलेनिय जीवोंकी उत्पत्ति गर्भज मानी जानी चाहिये। इनका वेद पुंवेद और स्त्रीवेद भी हो सकता है, मात्र नपुंसक नहीं। एतद्विषयक शास्त्रीय मान्यता पर पुनर्विचार करनेका जैनने संकेत दिया है। यही नहीं, अब तो बहुतेरे वनस्पतियोंका भी सलिंगी तथा बैक्टीरिया आदिकी अलिंगी उत्पत्तिका ज्ञान हुआ है। फलतः गर्भज उत्पत्तिको सलिंगी और अलिंगी—दो प्रकारका मानना चाहिये। इसके अनेक उदाहरण लोढ़ाने दिये हैं।

विभिन्न प्रकारके जीवोंको जैन शास्त्रोंमें अनेक प्रकारके वर्गीकृत किया गया है। संसारी जीवोंका ज्ञानेन्द्रियाधारित वर्गीकरण उनकी अपनी विशेषता है। मनुस्मृतिमें यह वर्गीकरण उत्पत्ति स्रोत पर आधारित है। लेकिन यहाँ एक बात माननीय है कि क्या मन छठी इन्द्रिय है या इसे अनिन्द्रिय ही माना जावे? तामिल व्याकरणके पाँचवीं सदीके ठोलक कप्पियं[४] नामक ग्रन्थमें पाँचके बदले छः इन्द्रियोंका उल्लेख है जिनमें मन छठी इन्द्रिय है। वहाँ केवल मनुष्योंमें ही यह छठी इन्द्रिय मानी गई है। वस्तुतः द्रव्यमनके रूपमें मनको भी इन्द्रिय माना जा सकता है पर इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। यह भी एक शोधका विषय हो सकता है कि मनका इन्द्रियत्व कब प्रचलित था और कब वह अनिन्द्रियकी कोटिमें आ गया। पंचेन्द्रियोंके क्रमिक विकासके आधारपर जीवोंको पाँच प्रकारका बताया गया है। जीवाभिगममें इन्हें ही दो से लेकर बत्तीस प्रकारका निरूपित किया गया है। एकेन्द्रिय जीवोंकी स्थावर तथा एकाधिक पंचेन्द्रिय जीवोंको त्रस कहा गया है। उन्हें निम्न प्रकारसे उदाहरित किया गया है :

एकेन्द्रिय,	जीव,	स्थावर	पृथ्वी	जल, तेज, वायु और वनस्पति।
इन्द्रिय	जीव	त्रस	,,	कृमि (गोबर और पेटके जीव), जलौका, शंख, आदि ३० प्रकारके जीव।
त्रि-इन्द्रिय	जीव		,,	चींटी, जुआँ, पिपीलका, कनखजूरा, आदि ३९ प्रकारके जीव।

४. नायर बी० के० : क्लासीफिकेशन आव ऐनोमल्स इन ठोलकप्पियम, विश्वभारती सोमिनार, दिल्ली, १९७४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिय,	जीव,	स्थावर,	पृथ्वी,	जल,	तेज,	वायु और वनस्पति ।
चतुरिन्द्रिय	जीव		,,	भौंरा, बिच्छू, मच्छर, मधुमक्खी, मकड़ी, मक्खी आदि ३९ प्रकारके जीव ।		
पंचेन्द्रिय	जीव		,,	नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव इनमेंसे प्रत्येकके अनेक भेद वर्णित हैं ।		

एकेन्द्रिय जीव :—यद्यपि जीवभिगममें एकेन्द्रिय स्थावर जीवोंके तीन ही भेद किये हैं—पृथ्वी कायिक, जल कायिक और वनस्पति कायिक, पर उत्तरवर्ती समयमें इनमें तेज और वायुकायिक और जोड़े गये जिन्हें पूर्वमें त्रस माना जाता रहा है क्योंकि ये गतिशील हैं । यद्यपि आधुनिक वैज्ञानी यह नहीं मानते हैं कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु स्वयं सजीव हैं, पर इनमें अनेक प्रकारके जीव रहते हैं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है । शास्त्रोंमें इन्हें चार प्रकारका बताया गया है जिनमेंसे केवल एक ही भेद है जो सजीव है, पर उसमें पृथ्वीत्व नहीं है । उसे पृथ्वीत्व ग्रहण करना है । इसी प्रकार जलादिकी भी स्थिति है । फलतः उपलब्ध पृथ्वी, जल, तेज और वायु आगमतः भी निर्जीव हैं, ऐसा माना जा सकता है । लेकिन आगमोंमें इनकी प्राकृतिक उत्पत्ति एवं शास्त्र-अनुपहतताकी स्थितिको इनकी सजीवता माना है । फलतः इन चार भूतोंकी सजीवता सुव्याख्यात नहीं प्रतीत होती । विद्वानोंकी गहनतासे इस तथ्यकी छानबीन करनी चाहिये । पर यह सही है कि इन भूतोंकी सजीवताकी बात जैनोंकी अपनी विशिष्टता है ।

लोढ़ाने वनस्पति कायोंकी आगमोक्त सजीवताको आधुनिक वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्यमें अच्छी तरह समीक्षित किया है । सिकदरने भी अपने लेखमें पर्याप्तियोंको वर्तमान प्रोटोप्लाज्मके समकक्ष मानकर वनस्पतियोंके अनेक आगमोक्त वर्णनोंको बीसवीं सदीके सैद्धान्तिक निरूपणोंसे जोड़नेकी खींचतान की है । लेकिन जैनने बताया है कि सभी वर्णन पूर्व यंत्र युगीन हैं । जैन ग्रंथोंमें वनस्पतियोंसे सम्बन्धित विविध वर्णन मुख्यतः तीन कोटियोंमें केन्द्रित किये जा सकते हैं—शरीर, आकार और वर्गीकरण । वनस्पतियोंकी कोशिकी, पर्यावरणिकी एवं शरीर-क्रिया-विज्ञान आदि पर वर्णन नगण्य है । लोढ़ा और सिकदरने इन विषयोंके कुछ उद्धरण दिये हैं जो आगम युगके प्रकृति निरीक्षणके स्थूल रूपको ही प्रकट करते हैं । इनकी सूक्ष्मता तथा भाषनीयता अब बहुत हो गई है । इन नये विवरणोंके समावेशकी प्रक्रिया एक विचारणीय विषय है ।

वनस्पतियोंके आगमोक्त वर्गीकरण पर विचार करते हुये जैनने बताया है कि उपयोगितावादी वर्गीकरण न होकर प्राकृतिक गुणों या समानताओं तथा विकास वाद पर आधारित है । सर्वप्रथम उन्हें साधारण (अनंत काय) और प्रत्येकके रूपमें वर्गीकृत किया गया है । साधारण सूक्ष्म और बादर दो प्रकारके होते हैं । इन्हें निगोद भी कहते हैं । प्रत्येक जीव बादर ही होते है जो सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित के भेदसे दो प्रकारके होते हैं । प्रत्येक जीव प्रारम्भमें अप्रतिष्ठित ही होता है और बादमें सप्रतिष्ठित हो जाता है । सूक्ष्म साधारण जीव गोलाकार और अदृश्य होते हैं और ये स्थूल साधारण जीवोंमें उत्परिवर्तित हो सकते हैं । वे अलिंगी होते हैं । ये प्रत्येक कोटिके जीवोंकी उत्पत्तिमें भी कारण होते हैं । ये जीवनमें सबसे प्रारम्भिक रूप है । लोढ़ाने बताया है कि सूक्ष्म साधारण जीवोंको आधुनिक बेक्टीरियाके समकक्ष माना जा सकता है । ये स्वजीवी भी होते हैं और परजीवी भी होते हैं । इन्हें सूक्ष्मदर्शियोंसे ही देखा जा सकता है । बादर साधारण जीवोंमें अनेक सूक्ष्म साधारण जीव होते हैं । प्रज्ञापनामें इनके ५० प्रकार बताये गये हैं । इनमें फँफूदी, काई, शैवाल, किण्व आदि भी समाहित हैं । जिन्हें आजकल ऐलगे, फंजस, वायरस आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नामोंसे कहा जाता है। यदि सूक्ष्म साधारण जीवको एक कोशिकीयके समकक्ष माना जाय, तो बादर साधारण और प्रत्येक जीव बहुकोशिकीय वनस्पति ठहरते हैं। प्रत्येक जीवोंके भी विभिन्न प्रकारसे ३३० भेद बताये गये हैं जिन्हें जैनसे सारणीबद्ध किया है। शास्त्रोंमें बताया गया है कि इन सभी साधारण वनस्पतियोंके चौदह लाख और प्रत्येक वनस्पतियोंके १० स्पीशीज होते हैं। इस प्रकार वनस्पतियोंके कुल चौबीस लाख स्पीशीज होते हैं। इनके कुलोंकी संख्या १०१३ बताई गई है। वर्तमानमें वनस्पति शास्त्रियोंके लिये तो ये सूचनायें अतिशयतः अतिरंजित प्रतीत होती हैं। हाँ, वे इनके विविध आकार व विस्तारके विवरणसे सहमत हैं। लेकिन वे इनकी अन्तर्मुहूर्तकी जघन्य आयुकी सीमा पर वे मौन दिखते हैं।

यद्यपि वनस्पति जीव एकेन्द्रिय होते हैं, फिर भी सत्प्ररूणा सूत्रके अनुसार उन्हें अन्य इन्द्रियोंके भी संवेदन होते हैं जो वे अपनी स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा ही ग्रहण करते हैं। हाल्डेनने बताया है कि वनस्पतियोंमें सभी इन्द्रियाँ होती हैं। आगमकी भाषामें इन्हें भावेन्द्रियोंके रूपमें ही मानना चाहिये क्योंकि वनस्पतियोंमें अन्य इन्द्रियाँ भौतिक रूपसे विकसित पाई जातीं।

वनस्पतियोंके सम्बन्धमें आगमोंमें वर्णन अनेकत्र बिखरा हुआ है और उपरोक्त संक्षेपणों और समीक्षणोंको पूर्ण नहीं माना जाना चाहिये। इस बातकी आवश्यकता है कि शोधार्थी सभी आगमिक स्रोतों से इनका पूर्ण संकलन करें। तभी समीचीन समीक्षा एवं तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

द्विन्द्रियक जीव :—गतिशील जीवोंको त्रस कहा गया है। आजकी भाषामें इन्हें गतिशील प्राणी कहा जाता है। यद्यपि प्राण वनस्पतियोंमें भी होते हैं, फिर भी प्राणि शब्द उच्चतर जीवोंके लिये रूढ़ हो गया है। जैन ग्रन्थोंमें प्राविधोंके सम्बन्धमें उपलब्ध विवरणोंका आंशिक संकलन और समीक्षण जैन और सिकदर ने किया है। ओ० पी० जग्गीने बताया है कि त्रसोंका इन्द्रिय विकास पर आधारित वर्गीकरण चरक, सुश्रुत, प्रशस्तपाद और अरस्तूके वर्गीकरणसे अधिक मौलिक और व्यापक है। सिकदरने इस वर्गीकरणका संक्षेपन किया है। त्रसोंके मुख्य चार भेद माने गये हैं—द्वि-इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। संघवीने अपनी व्याख्यामें बताया है कि ये भेद मुख्यतः द्रव्येन्द्रिय पर आधारित हैं क्योंकि सभी जीवोंमें पाँचों ही भावेन्द्रियाँ होती हैं। लेकिन सिद्धान्तशास्त्रीने इन भेदोंको भावेन्द्रियाधारित बताया है जो समुचित प्रतीत नहीं होता। सभी द्वि-इन्द्रिय, त्रि-इन्द्रिय एवं चतुरिन्द्रिय जीवोंको मनरहित तथा अलिंगी बताया गया है। इन्हें नपुंसक लिंगी माना जाता है। पंचेन्द्रिय जीवोंमें कुछको मनरहित तथा अलिंगी बताया गया है। अन्योंको मनसहित तथा सलिंगी बताया गया है। प्रज्ञापना और जीवविचार प्रकरण पर आधारित अपनी तुलनात्मक सारणीमें जैनने आधुनिक प्राणिवैज्ञानिक मान्यताओंके साथ जैन ग्रन्थोंमें वर्णित प्राणिविज्ञानका संक्षेपण किया है और बताया है कि शास्त्रीय विवरणके १७ बिन्दुओंमेंसे १० बिन्दुओंका मिलान नहीं होता। उदाहरणार्थ, आधुनिक प्राणिविज्ञान सभी त्रसोंमें द्रव्यमनकी उपस्थिति मानते हैं, उनकी सलिंगी उत्पत्ति मानते हैं, उन्हें तीनों वेदका मानते हैं और उनकी संख्या काफी कम मानते हैं। यही नहीं, अनेक उदाहरणोंमें जीवोंकी इन्द्रियाँ शास्त्रीय मान्यताओंसे अधिक पाई गई हैं। इन चाक्षुष अन्तरों पर गंभीरतासे विचार करने की आवश्यकता है। यही नहीं, प्राणिविज्ञान सम्बन्धी अध्ययनके अनेक क्षेत्रोंमें शास्त्रीय विवरण नगण्य ही मिलता है। सिकदरने अपने विवरण में इस ओर ध्यान नहीं दिलाया है। इसके बावजूद भी, यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि जैनाचार्योंने अपने परीक्षणकी परिधिमें सूक्ष्म और बाहर सभी प्रकारकी त्रसोंकी ४७० जातियोंको समाहित किया है जैसा सारिणी २ से प्रकट होता है। इस प्रकारका वर्गीकृत विवरण अन्य दर्शनोंमें उपलब्ध नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सारणी २. विभिन्न प्रकारके त्रसोंका विवरण

कोटि	उदाहरण		जाति	लिंग
द्वि-इन्द्रिय	शंख, गोंच, विभिन्न	प्रज्ञापना	जीव विचार प्रकरण	अलिंगी
	प्रकारके कृमि	३०	१२	,,
त्रि-न्द्रिय	चींटी, इल्ली, कनखजूरा, जुआँ			
	पिशुक आदि।	३९	१२	,,
चतुरिन्द्रिय	मक्खी, टिड्डी, भ्रमर, मच्छर,			
	पतंगा, तितली आदि	३८	१०	,,
पंचेन्द्रिय तिर्यंच	(अ) जलचर	५(३३)	५	अलिंगी और सलिंगी
	(ब) थलचर	२(३५)	३	,,
	(स) नभचर (पक्षी)	४(४६)	४	,,
पंचेन्द्रिय मनुष्य	(अ) सम्मूर्च्छन	१४	—	अलिंगी
	(ब) गर्भज मनुष्य अन्तर्द्वीपी	२८	—	सलिंगी
	कर्मभूमिज आर्य	८९	—	,,
	म्लेच्छ	५६	—	,,
	भोगभूमिज	२		
		४७०		

इससे ज्ञात होता है कि जैनाचार्य अध्यात्मके क्षेत्रमें जितने अग्रणी रहे हैं, उतने ही वे प्रकृति निरीक्षण एवं सैद्धान्ति विचारोंके क्षेत्रमें भी अपने समयमें अग्रणी रहे हैं। जैनने इन प्रकरणोंमें अनेक विसंगतियोंकी ओर संकेत देते हुये बताया है कि आगमोंमें अनेक वर्तमान सूक्ष्मतर निरीक्षणोंके निरूपण न करनेका कारण सम्भवतः यन्त्रोंका अभाव तथा अहिंसाका सिद्धान्त रहा होगा। वनस्पति विज्ञानके समान प्राणि-विज्ञानके तत्व भी अनेक आगम ग्रन्थोंमें विखरे पड़े हैं। उनका अभी पूरा संकलन नहीं हो पाया है। ये प्रकरण श्वेताम्बर मान्य ग्रन्थोंमें पर्याप्त मात्रामें पाये जाते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org